



बाजी पलटने वाला दांव

आम चुनाव में मोदी के नेतृत्व में भाजपा की रणनीतिक कामयाबी का निहितार्थ तलाश रहे हैं डॉ. एके वर्मा

16 मई को चुनाव नतीजों के आने और चहुँओर मोदी विजय की हुंकार के बाद वे तमाम लोग हाशिये पर चले गए जो तीसरे मोर्चे के वजूद और वर्चस्व में आने तथा उसके माध्यम से प्रधानमंत्री बनने या बनाने का सपना पाते हुए थे। जो मोदी-लहर को न देख सके वे या तो राजनीति की समझ नहीं रखते या जानबूझकर उसकी अनदेखी कर रहे थे। मोदी के लिए इस जीत का केवल यही महत्व नहीं कि वे प्रधानमंत्री बन गए या कि उन्होंने अपनी पार्टी को राष्ट्रीय राजनीति में पुनर्स्थापित किया, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि विगत 12 वर्षों से सांप्रदायिक होने के आरोपों का दंश झेलने के बाद न केवल न्यायालय, बल्कि जनता की अदालत से भी वे ससम्मान बरी हो गए।

लेकिन ऐसा हुआ कैसे? इसके लिए न केवल मोदी का अथक परिश्रम, उनकी रणनीतियाँ, पूरी टीम मोदी का योगदान और कुशल प्रचार अभियान, बल्कि स्वयं मोदी का व्यक्तित्व, उनका विकास-एजेंडा और समावेशी राजनीति की उनकी दृष्टि भी जिम्मेदार है। भाजपा पर हमेशा आरोप लगते रहे कि वह शहरों और उच्च जातियों की पार्टी है जिसमें ग्रामीणों तथा पिछड़े और दलितों-वंचितों की हिस्सेदारी नगण्य है। वह हिंदुत्व का चोला ओढ़कर अगड़ी जातियों के हितों की हिमायती है और शायद ये आरोप सही भी थे, क्योंकि 1989 में जब पिछड़े और दलित कांग्रेस से छिटके तो वे भाजपा की ओर न जाकर जाति पर आधारित दलों सपा और बसपा में लीन हो गए और तभी से न केवल कांग्रेस का पराभव हुआ, वरन भाजपा के सामने भी एक संकट पैदा हो गया। यह संकट और भी गहरा गया जब तत्कालीन प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागूकर पिछड़ों को आरक्षण दिया। तबसे लेकर आज तक भाजपा कभी भी मंडल और कमंडल के द्वंद से बाहर नहीं निकल सकी जिससे उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में क्रमशः मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद यादव पिछड़ों के मसीहा हो गए। जहाँ लालू पिछड़े-वर्ग को साथ रख सके वहीं मुलायम केवल पिछड़ी-जातियों तक सिमट गए और मायावती दलितों को ले गई। और तब से उत्तर प्रदेश में इन्हीं दो पार्टियों-सपा और बसपा का वर्चस्व रहा है। भाजपा प्रदेश की राजनीति में पिछड़ी जाति के कल्याण सिंधि, विनय कटियार और उमा भारती के रूप में पहले ही कुछ असफल प्रयोग कर चुकी है, लेकिन इस बार मोदी को आगे कर उसने अपने प्रयास को सफलता के



भाजपा की चुनौती

◆ **भाजपा द्वारा समावेशी राजनीति की पहल एक सुखद आश्चर्य है, लेकिन इस स्थिति को बनाए रखना उसके लिए एक चुनौती भी है**

मुकाम तक पहुँचाया। उत्तर प्रदेश से मोदी को प्रत्याशी बनाने तक किसी को मोदी की जाति का पता नहीं था। लेकिन जैसे-जैसे चुनाव आगे बढ़ा अन्य दलों के नेताओं ने उनकी पिछड़ी जाति को एक मुद्दा बना दिया। मोदी को बिन मांगे एक मास्टर-स्ट्रोक लगाने का मौका मिल गया जिस पर उन्होंने छक्का लगाने में कोई भूल न की। इसका कारण यह है कि यूपी में पिछड़ों की आबादी कम से कम 41 प्रतिशत है (मंडल आयोग उसे 52 प्रतिशत और हुकुम सिंह समिति 54 प्रतिशत मानती है? यदि इसमें न्यूनतम प्रतिशत भी मान लें तो भी उनकी आबादी दलितों से दोगुनी और मुस्लिमों से सवा दो गुनी बैठती है।

इस विशाल जनसमूह को समाजवादी पार्टी कभी एकजुट न कर सकी और केवल यादव-मुस्लिम गठजोड़ के चक्कर में पड़ी रही। मोदी ने विकास के एजेंडे को छोड़े बिना उस विशाल पिछड़े जनसमूह से संवाद स्थापित कर लिया जिससे 2014 के चुनावों में उत्तर प्रदेश में भाजपा को 27 प्रतिशत यादव, 52 प्रतिशत कुर्मी और 60 प्रतिशत सर्वाधिक पिछड़ी जातियों के वोट मिले। इतना ही नहीं, मोदी ने दलितों को भी आकर्षित करने में सफलता हासिल की। भाजपा को 18 प्रतिशत जाटवों और 45 प्रतिशत गैर-जाटव दलितों ने वोट दिए जो मायावती के उस दावे को गलत साबित करता है

जिसमें उन्होंने सभी दलितों द्वारा बसपा को वोट देने की बात की। यहाँ तक कि मुस्लिमों ने भी देश और प्रदेश के अनेक हिस्सों में मोदी के पक्ष में वोट डाले। भाजपा द्वारा ऐसी समावेशी राजनीति की पहल एक सुखद आश्चर्य है, लेकिन इस स्थिति को बनाए रखना भाजपा के लिए एक चुनौती है। इसका कारण यह है कि 2017 में विधानसभा चुनाव होने वाले हैं और उसमें भाजपा पर इस प्रदर्शन को दोहराने का दबाव होगा, जो इसलिए कठिन होगा, क्योंकि इतनी करारी हार के बाद भी सपा 22 प्रतिशत और बसपा 19 प्रतिशत के साथ अपना जनाधार बचाए हुए है और आगामी विधानसभा चुनाव में नरेंद्र मोदी का नेतृत्व कोई मुद्दा नहीं होगा। जाहिर है, पिछड़े और दलित मतदाताओं की निष्ठाएँ क्रमशः मुलायम और मायावती में लौट सकती हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि अब मजदूत राष्ट्रीय और प्रांतीय चुनावों में बखूबी फर्क करने लगा है, पर कहां है भाजपा के पास प्रांतीय नेतृत्व और कहां है उसका स्थानीय कार्यकर्ता?

सबसे जटिल समस्या कांग्रेस के सामने है। पार्टी को लोकसभा में प्रमुख विपक्षी दल की मान्यता के भी लाले पड़े हैं। और उत्तर प्रदेश में उसके राष्ट्रीय अध्यक्ष और उपाध्यक्ष बमुश्किल रायबरेली और अमेठी से अपनी सीटें बचा पाए हैं। इसके बावजूद ऐसा क्या है कि 130 वर्ष पुरानी और देश को आजादी दिलाने वाली पार्टी को पूरे देश में नेतृत्व के लिए नेहरू-गांधी परिवार के अलावा कोई नेता या परिवार दिखाई ही नहीं देता और यदि वास्तव में ऐसा है तो मानना पड़ेगा कि या तो कांग्रेस ने भावी नेतृत्व-रचना का कोई एजेंडा अपने समक्ष नहीं रखा या पार्टी ने सामंतवादी मानसिकता से आगे बढ़कर दलीय लोकतंत्र की शैली को नहीं अपनाया। जो लोग इस पड़ाव पर प्रियंका वाड़ा को कांग्रेस का नेतृत्व सौंपे जाने की मुहिम चला रहे हैं वे कांग्रेस के सच्चे हितैषी नहीं हो सकते। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कांग्रेस को करारी शिकस्त मिली, क्योंकि उसे कल फिर जीत भी मिल सकती है, गंभीर बात यह है कि दस वर्षों के बाद उसे एक मौका मिला है कि शासन के दायित्व से मुक्त वह लोकतांत्रिक पर नए ढंग से पार्टी को पुनर्गठित करने, उसे ऊर्जावान बनाने और जनता से सतत और सकारात्मक संवाद स्थापित करने का प्रयास करे। मोदी ने तो अपना मास्टर-स्ट्रोक खेल दिया है। क्या सपा, बसपा और कांग्रेस के पास भी कोई ऐसी योजना है?

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक हैं)

response@jagran.com